International Research Journal of Human Resources and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor- 5.414, Volume 5, Issue 2, February 2018
Website- www.aarf.asia, **Email** : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

तत्त्ववेत्ता श्रीकृष्ण

बृजेश कुमार सिंह
शोधच्छात्र (संस्कृत विभाग) इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

भगवान् श्रीकृष्ण विष्णु के आठवें अवतार और हिन्दू धर्म के ईश्वर माने जाते हैं। कन्हैया, श्याम, गोपाल, केशव, द्वारकेश या द्वारकाधीश, वासुदेव आदि नामों से भी जाना जाता है। कृष्ण निष्काम कर्मयोगी, एक आदर्श दार्शनिक, स्थितप्रज्ञ, तत्त्ववेत्ता एवं दैवी संपदाओं से युक्त युग पुरुष थे। ''कृष्ण'' मूलतः एक संस्कृत शब्द है, जो 'काला', 'अंधेरा' या 'गहरा नीला' का समानार्थी है।[1] अंधकार शब्द से इसका सम्बन्ध ढलते चन्द्रमा के समय को कृष्णपक्ष कहे जाने में भी स्पष्ट झलकता है। इस नाम का अनुवाद कहीं–कहीं अति–आकर्षक के रूप में भी किया गया है। एक व्यक्तित्त्व के रूप में भगवान् कृष्ण का विस्तृत विवरण सबसे पहले महाकाव्य महाभारत में लिखा गया है, जिसमें कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में दर्शाया गया है। महाकाव्य की मुख्य कहानियों में से भगवान श्रीकृष्ण भगवद्गीता का निर्माण करने वाले महाकाव्य के छठे पर्व (भीष्म पर्व) के (25–42) अठ्ठारह अध्याय में युद्ध के मैदान में अर्जुन को ज्ञान देते हैं।[3] सभी हिन्दू ग्रन्थों में, श्रीमद्भगवद्गीता को सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है साथ ही साथ श्रीमद्भगवद्गीता को प्रस्थानत्रयी[4] में परिगणित किया जाता है। गीता वेदान्त दर्शन का सार है और अत्यन्त सादरणीय ग्रन्थ है। यह गोपालनन्दन श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को बछड़ा बनाकर उपनिषद् रूपी गायों से दुहा गया अमृतमय दूध है जिसे सुधीजन पीते हैं।[5]

भगवान् श्रीकृष्ण तत्त्ववेत्ता थे। अर्थात् वे तत्त्व के जानकार और मर्मज्ञ थे। इसी तत्त्व का ज्ञान भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कुरूक्षेत्र युद्ध में दिया। अर्जुन जब दोनों सेनाओं के मध्य उपस्थित हुए तो वह मोहग्रस्त हो गये और शोक करने लगे तब भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तू न शोक करने योग्य मनुष्यों के लिये शोक करता है और पण्डितों के जैसे वचनों को कहता है परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिए और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिए भी पण्डितजन शोक नहीं करते।[6] भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि क्षत्रिय राजपुत्र और धर्मरक्षक होने के नाते उसका कर्त्तव्य है कि वह अधर्म और अशुभ से लड़े एवं धर्म को विजयी बनाये। अर्जुन तर्क–वितर्क करता गया और श्रीकृष्ण समझाते गये कि युद्ध करना उसका धर्म है, और उसे अपने 'स्वभाव' और स्वधर्म का पालन करना चाहिये। यह ध्यान देने योग्य है कि गीता का उपदेश सम्पूर्ण होने पर श्रीकृष्ण ने केवल यही कहा– ''जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वही करो''[7] और अर्जुन ने उत्तर दिया– 'आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया, अतः मैं, जैसा आपने कहा, वही करूँगा।'[8]

गीता का प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्त है कि जो असत् है उसका भाव नहीं हो सकता, और जो सत् है उसका कभी अभाव नहीं हो सकता।[9] सत् वही है जो त्रिकालाबाधित हो, अर्थात् जो भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में सर्वदा नित्य, एकरस और अपरिवर्तनशील रहे। यह लक्षण शुद्ध आत्मतत्त्व या ब्रह्म का है और वही 'सत्' है। गीता में आत्मतत्त्व के लिये नित्य, अविनाशी, अज, अव्यय, सर्वगत, अचल, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य और अविकार्य आदि पद प्रयुक्त हुए हैं। शरीर

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

नश्वर है; आत्मा नित्य है, अतः वह शरीर के साथ नष्ट नहीं होता।[10] जिस प्रकार कोई व्यक्ति पुराने जीर्ण वस्त्रों को उतार दूसरे नये वस्त्रों को धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीरों को छोड़कर नये शरीरों को धारण करता है।[11] गीता ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों को मानती है और यह भी मानती है कि ये दोनों रूप एक ही अभिन्न तत्त्व के हैं। बह्म जगत् की उत्पत्ति, स्थिति ओर लय का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण हैं' वह शुद्ध चैतन्य, अखण्ड और आनन्दस्वरूप है; वह निर्विकल्प निरूपाधि विश्वातीत भी है। अन्तर्यामी रूप में वह सारी प्रकृति और समस्त प्राणियों में वास करता है जिस प्रकार सूत्र में मणिगण पिरोये रहते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म में समस्त विश्व अनस्यूत है।[12] विश्वात्मा होते हुए भी वह विश्व में सीमित नहीं है; वह विश्वातीत भी है, यह उसका अनुत्तम पर भाव है।[13]

गीता परमेश्वर की दो प्रकृतियों का वर्णन करती है, अपरा और परा। अपरा प्रकृति को क्षेत्र और क्षर पुरुष भी कहा गया है। यह जड़ प्रकृति है जिसके भीतर समस्त भौतिक पदार्थ विद्यमान हैं। परा प्रकृति में चेतन जीव आते हैं। इसकी अन्य संज्ञा क्षेत्रज्ञ और अक्षर पुरुष भी है।[14] चैतन्य रूप होने से जीव ईश्वर का उत्कृष्ट या परा प्रकृति या विभूति है। जीव कूटस्थ और अक्षर है। जीव ईश्वर का सनातन अंश है।[15] क्षर पुरुष (जड़ प्रकृति) और अक्षर पुरुष (जीव) इन दोनों के ऊपर उत्तम पुरुष या पुरुषोत्तम है।[16] यह पुरुषोत्तम ही 'परमतत्त्व' है। यह जड़ प्रकृति और चेतन जीव दोनों का आत्मा है और दोनों में अन्तर्यामी रहकर दोनों का नियमन करता है; किन्तु यह दोनों के ऊपर (अतीत) भी है, यह विश्वातीत, पुरुषोत्तम है। इस प्रकार गीता में तत्त्ववेत्ता भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा निर्गुण ब्रह्म तत्त्व और सगुण ईश्वर तत्त्व का अत्यन्त सुन्दर समन्वय किया गया है।

सन्दर्भ

1- Monier Williams Sanskrit- English Dictionary (2008 revision)

2. Bryant 2007, पृष्ठ 382

3- संस्कृत साहित्य का इतिहास– डॉ0 उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' पृष्ठ 158

4. प्रस्थानत्रयी–उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र–ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम् आमुख, पृष्ठ 5, 6

5. सर्वोपनिषदो गावो दोग्धागोपालन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धंगीतामृतंमहत्।।

6. अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।–गीता, 2/11

7. यथेच्छसि तथा कुरु। गीता, 18/63

8. करिष्ये वचनं तव। गीता, 18/73

9. नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। गीता, 2/16

10. न हन्यते हन्यमाने शरीरे। गीता, 2/20

11. गीता, 2/22

12. मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव। गीता 7/7

13. गीता, 7/24

14. गीता, 7/4, 5 तथा 15/16, क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।

15. ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। गीता, 15/7

16 गीता 15/17, 18 उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।